12417

॥ श्री जानकीवल्लभो विजयते ॥

श्रीमते रामानन्दाचार्य नमः

श्री अग्रदेवाचार्य नमः

श्री अग्रस्वामी चरित

12417

श्री अग्रदेवाचार्य जयन्ती, २०४०

श्री मदग्रदेवाचार्य पंच शताब्दी जयन्ती समारोह—रेवासा

सम्पादक :

आचार्य चरण चंचरीक

राघवदास वेदान्ताचार्य

रेवासा पीठ

प्रकाशक :

श्री बड़े-छोटे महाराज

(गोपाल सागर आश्रम)

विधानी—जयपुर

(मूल्य-११००० रामनाम जप)

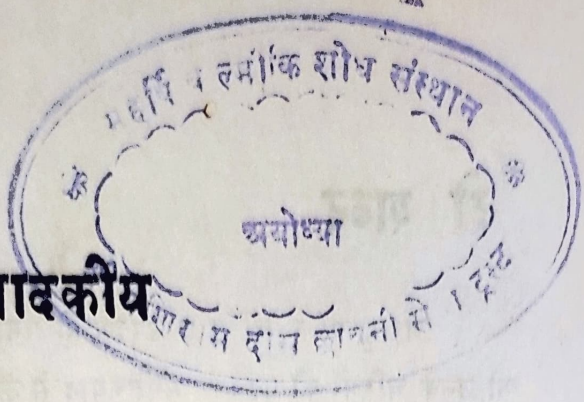

सम्पादकीय

श्री सीताराम जी की कृपा कोर का अवलोकन कर भगवान के नित्य मुक्त पार्षद अपनी इच्छानुसार इस धरा-धाम पर अवतरित हो जीवों का कल्याण करते हैं।

परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया है। अतः मानव बाह्यवाक चिक्या-चिक्य को ही सत्य व सुख रूप मान बैठा है। कोई धैर्यशाली मानव ही अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी कर परमानन्द प्राप्त कर पाता है। यद्यपि प्राणिमात्र का प्रयत्न अपने को सदैव सुखी रहने के लिए ही होता है। तथापि वह बार-बार दुखी होता रहता है इसका कारण शास्त्रकार अविवेक को मानते हैं। विवेक-ज्ञान ही सुखी होने का मूल कारण है। किन्तु मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति अधोगामिनी होने के कारण वह ज्ञान-निष्ठा से डिग जाता है। अतः मानव को सहारे की अपेक्षा है। वह सहारा है भगवद्-भक्ति, जिससे मानव अपने गन्तव्य को प्राप्त कर लेता है।

मानव की चित्त वृत्ति को अन्तर्मुखी करने का साधन मात्र भक्ति है। भगवान के दिव्य गुणों को श्रवण कर तथा दिव्य विग्रह का दर्शन कर उनके चरणों में अपने भावों को समर्पित करने से उसका चित्त स्वतः ही शुद्ध होने लगता है तथा अपने अन्दर छिपे परमानन्द को प्राप्त कर लेता है।

श्री अग्रदेवाचार्य जी ने भक्ति में रसिकोपासना का प्रचार कर भक्ति को अत्यन्त सरस बना दिया। मानव मन शुष्क उपासना से ऊब चुका था, उस समय आचार्य श्री अवतरित हो स्वयं आचरण द्वारा रसिकोपासना से भगवत्साक्षात्कार किया तथा रसिकोपासना का प्रचार किया। भारत के महापुरुषों ने स्वयं आचरण कर ही धर्म का प्रचार किया जिससे धर्म के सम्बन्ध में सन्देह करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हो। ऐसे महापुरुषों के चरित्र को प्रकाशित करने से आज के मानव को बड़ा सम्बल प्राप्त होगा। प्रस्तुत पुष्प में स्वामी जी की चरित्र सामग्री के प्रतिरिक्त उनके उपदेश व उपासना के पद्यों का भी संग्रह किया है। जिनको पढ़कर मानव को नयी चेतना शक्ति प्राप्त होगी।

मैं बडे छोटे महाराज विधानी आश्रम की कृपा का आभारी हूँ। जिनकी शुभ प्रेरणा से प्रस्तुत पुष्प प्रकाशन का भार उनके सन्निष्ठ शिष्य श्री सीताशरण जी जयपुर ने उठाया। अन्त में मैं श्री रामबल्लभा श्री किशोरी जी व पूज्य गुरुदेव के चरणों का ध्यान कर उनके चरणों में यह पुष्प समर्पित करता हूँ।

दो शब्द

महापुरुषों के चरित्र व उपदेश ही समाज के आदर्श होते हैं। भूले हुए मानव को उनके चरित्रों को पढ़कर भौतिकवाद से ऊपर उठने का सम्बल प्राप्त होता है। तभी मानव वास्तविक शान्ति की अनुभूति प्राप्त करता है। महापुरुषों का चरित्र ही हम लोगों का सच्चा शिक्षक है। अतः उनके चरित्र को प्रकाश में लाना समाज का पुनित कर्तव्य है। श्री अग्र स्वामी चरित पुष्प श्री अग्रदेवाचार्य पंचशताब्दी जयन्ती समारोह के उपलक्ष में प्रकाशित हो रहा है। इसको प्रकाशित करने का भार जयपुर के प्रसिद्ध सन्त श्री बड़े छोटे महाराज (विधानी आश्रम) की सुप्रेरणा से उनके अनन्य सेवक श्री सीताशरण जयपुर ने लिया। है तदर्थ उन्हें हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ कोटिशः धन्यवाद !

—स्वामी शालिग्रामाचार्य

——

मंगल कामना !

आचार्यों के चरित्र समाज के आदर्श होते हैं। आचार्य शास्त्रानुकूल आचरण-कर मानव को भौतिक जगत से उठने का उपदेश देते हैं। यद्यपि ऐसे महान् विभूति आचार्य आज हम लोगों के बीच नहीं हैं। तथापि उनका चरित्र ही हम लोगों की आध्यात्मिक उन्नति का सम्बल है। बड़े छोटे महाराज विधानी आश्रम की सुप्रेरणा से सीताशरण जयपुर ने श्री अग्रस्वामी चरित प्रकाशित कर प्रसनीवीय कार्य किया है। तदर्थ हमारी मंगल कामना है।

—रामभक्त बलरामदास

————

रैवासा वैष्णव महापीठ

एक परिचय

राजस्थान के वैष्णव महापीठों में रैवासा महापीठ का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। देश के इस भू-भाग में वैष्णव धर्म के प्रति जनास्था को सुदृढ़ करने में इस महापीठ का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके जयपुर-खण्डेला एवं सीकर के राज-घरानों से गुरु-शिष्य के सम्बन्ध रहे हैं। कालान्तर में इस महापीठ के तपःपूत धार्मिक प्रचारकों ने वैष्णव धर्म का डिण्डिम घोष इस देश के कोने-कोने में किया था।

श्री रामानन्दीय श्री सम्प्रदाय का केन्द्र स्थान पहले अयोध्यापुरी था, मुगलों की हिन्दू धर्म द्वेषी नीति के कारण आराधक लोगों ने अपने देव-विग्रह को सुरक्षित स्थान में ले जाने के लिए राजस्थान का चुनाव किया। मुगलों की प्रबल शक्ति का प्रतिकार उस समय प्रमुख राजवंश कर रहे थे। अतः समय-समय पर ये विस्थापित देव-विग्रह राजस्थान में प्रस्थापित हुए। इन्हीं परिस्थितियों में श्री रामानन्दाचार्य जी के पौत्र शिष्य प्रसिद्ध सन्त श्री कृष्णदास जी पयहारी जी (जिनको पूज्य श्री सद्गुरु-देव पतित पावन जी कहा करते थे) विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में घूमते हुये आमेर के निकटवर्ती गालवाश्रम में पहुँचे।

जयपुर राजघराने पर उस समय नाथपंथी साधुओं का बड़ा प्रभाव था। भक्त-वर पयहारी जी ने अपनी सिद्धि सम्पन्नता एवं तपश्चर्या के बल से नाथों को हटा कर जयपुर राजघराने पर अपना प्रभाव स्थापित किया। उन्हीं के प्रभाव के कारण जयपुर का राजघराना श्री रामानन्दीय सम्प्रदाय का परमभक्त हो गया और जयपुर में गालवाश्रम में गुरु गद्दी बनी।

इन्हीं पयहारी जी के शिष्य श्री कील्हदेव जी ने गालवाश्रम में गुरु गद्दी स्थापित की। पयहारी जी के ही दूसरे शिष्य श्री अग्रदास जी ने रेवासा नामक स्थान में अपने आराध्य देव की स्थापना में अपने गुरुदेव की चरण पादुकाओं को भी प्रतिष्ठित किया। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर श्री अग्रदास जी रेवासा में सम्वत् 1570 में पधारे। कई वर्षों तक रेवासा ग्राम के पर्वत के समीप पीपल वृक्ष के नीचे तपस्या की। उस समय रेवासा के आस-पास के क्षेत्रों में जल का नितान्त अभाव था।

स्वामी जी ने अपनी तपस्या के बल पर भूमि तल के नीचे स्थित जल को अपना चिमटा जमीन में प्रविष्ट करके प्रकट किया। उद्दाम वेग से शीतल जल की धारा फूट पड़ी। उस स्थान पर बना हुआ कुआँ आज भी विद्यमान है। यह महात्मा अग्रदास जी की तपस्या का सुफल था कि यह मरुभूमि पेय जल की सुविधा से सम्पन्न हुई और जल धारा ऊपर उठ आई।

स्वामी जी के सम्बन्ध में अनेकों चमत्कारी घटनायें प्रसिद्ध हैं। एक बारश्री अग्रदास जी सन्तों की जमात के साथ एक गाँव में पहुँचे जहाँ का एक धनाढ्य वैश्य उनका परम भक्त था। प्रायः एक महीने तक सन्तों की सेवा अच्छी तरह से होती रही, संयोग की बात है कि जमात के प्रस्थान के दिन सेठ के पुत्र की अकस्मात् मृत्यु हो गई। प्रकारान्तर से इस मृत्यु का दोष सन्तों की सेवा को दिया गया। उस समय स्वामी जी बड़े दुखी हुए। उन्होंने सन्त सेवा की महिमा प्रकट करने के लिए सन्तों का चरणामृत बालक के मुख में डाला जो संजीवनी बन गया और बालक तुरन्त जीवित हो गया ये चमत्कार देखकर सब लोग श्री चरणों में नतमस्तक हुए।

कहते हैं कि एक बार दिल्ली का बादशाह किसी कारणवश इस स्थान के पास से गुजर रहा था। अग्रदास जी की कीर्ति सुनकर वह इधर आया। उसके साथ कुछ मुल्ले मौल्लवी भी थे मौलवी ने ईर्ष्यावश अपना चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए कुँये के मुख पर चादर डालकर उसके चारों कोने चार सुपाड़ी से दबा दिये और चादर के ऊपर बैठकर नमाज पढ़ने लगा। उसके गुरु-उद्देश्य को समझ कर श्री अग्रदास जी ने प्रतिकार के रूप में अपनी चादर मुक्त आकाश में बिना किसी आधार के फैला दी और जलती धूनी उसी चादर पर स्थापित करके अपने इष्टदेव का ध्यान करने लगे। इस चमत्कार को देखकर बादशाह ने महाराज को कुछ भेंट स्वीकार करने की प्रार्थना की, पर वीतराग और निष्पृह तपस्वी ने कुछ भी ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। बादशाह ने सोलह सौ बीघा भूमि प्रदान की जिसमें मन्दिर की सैंकड़ों गायें विचरण करती थीं।

एक बार जयपुर के महाराजा मानसिंह श्री अग्रदास जी के दर्शन करने आये। स्वामी जी उस समय बाग में थे। अतः राजा भी बाग में चले आये, राजा के साथ भीड़-भाड़ देखकर स्वामी जी राजा से मिलने नहीं आये और मधुर ध्यान रस में लीन हो गये। उनके शिष्य नाभादास जी ने तथा उनके पीछे-पीछे स्वयं महाराजा ने आकर उस तपःलीन भक्त के प्रेम मग्न स्वरूप का दर्शन किया। इस घटना को भक्त-माल के टीकाकार प्रियादास ने निम्न लिखित रूप से पद्यबद्ध किया है—

दर्शन काज महाराज मानसिंह आयो,
धायो बाग मांझ बैठे द्वार द्वार पाल हैं।
झारि कै पतोवा गये बाहिर लै डारिबे को,
देखी भीर भार रहे बैठि ये रसाल है॥
आये देखि नाभा जूने साष्टांग करी ठाढ़े,
भरी जल आंखे चली अंसुवनि जाल हैं।
राजा मग चाहि हारि आनि कै निहारि नैन,
जानी आप जानी भये दासनि दयाल हैं॥

एक समय कील्हदेव जी, स्वामी अग्रदास जी, हेमानन्द जी आदि सन्त एक जगह एकत्रित थे, जिनमें अनेकों जोगी-वैरागी, विद्वान उपस्थित थे, उस समय कील्ह-देव जी ने कहा कि जो व्यक्ति अपने नियम और आचार से भगवद् भक्ति में लीन होता है, वह भगवत् कृपा को प्राप्त हो जाता है, इस पर अग्रदास जी ने कहा कि अगर भगवान की कृपा होती है तो भक्त आचार और नियमों के साथ भगवद् भक्ति में लीन होता है, अग्रदास जी के इस कथन को सिद्ध करने के लिए श्री जानकी जी का प्रागट्य हुआ, यह घटना रेवासा की वाटिका में घटित हुई थी। इसका समर्थन श्री अग्र स्वामी चरित से होता है।

श्री अग्रदास जी रसिक उपासना के परम आचार्य माने जाते हैं। द्वितीय शृंगार रसाचार्य श्री रसिक अली जी महाराज द्वारा रचित श्री सीताराम रस-चन्द्रोल के अनुसार श्री अग्रदास जी सीता जी की प्रिय सखी चन्द्रकला के अवतार सिद्ध होते हैं। ललितभाव से राम-सीता की भक्ति में, भक्तों में अग्रगण्य रहने के कारण वे अग्रदास के नाम से विख्यात हुए। इसका समर्थन रसिकाचार्य श्री युगल-प्रिया महाराज के ग्रन्थ रसिक प्रकाश भक्तमाल के मूल छप्पय 15 से होता है:—

अग्रस्वामि श्री अग्र सहचरी जनक लली की।
पुष्प वाटिका मिलन हेतु प्रिय भाँति मली की॥
—रसिक प्रकाश भक्तमाल

श्री जानक्या वयस्याहि नाम्ना चन्द्रकला शुभा।
तस्यावतारी लोकेस्मिनऽग्रदासेति विश्रुतः॥
—रस चन्द्रोदय

श्री अग्रदास जी के परमशिष्य श्री नाभा जी ने अपनी भक्तमाल में अपने गुरु जी के बारे में निम्न प्रकार से उल्लेख किया है।

श्री 108 अग्रदास स्वामी जी ने श्री सीताराम जी के भजन बिना किंचित्-मात्र भी काल व्यर्थ नहीं बिताया। आपका सदाचार किस प्रकार का था कि जैसा पूर्वाचार्य सन्तों का हुआ करता था। प्रातःकाल से वे पूर्व के महात्मा लोग जैसे

सम्पूर्ण भगवत कर्म करते आये हैं, वैसे ही आप भी मानसी तथा प्रत्यक्ष सेवा पूजा और नाम, रूप, गुण, स्मरण करते हुये अपने चित्त की वृत्ति सावधानतापूर्वक श्री युगल सरकार के चरण कमलों में एक रस लगाये रहा करते थे।

और, जो आपके स्थान के समीप पुष्प फलादि युक्त वाटिका थी, उसको "श्री सीताराम विहार स्थल अशोक वन और प्रमोद वन" की भावना से मानकर उसमें प्रीति करते थे, सो प्रीति आपकी लोक प्रसिद्ध हो गई, क्योंकि आप निज कर-कमलों से ही उसकी सब कृत्य, अर्थात् श्री तुलसी आदि वृक्षों का कोड़ना, सींचना, सूखे पत्रादिकों का बहारना इत्यादि निरन्तर किया करते थे और रसना (जिह्वा) से "श्री सीताराम" निर्मल नाम इस प्रकार से सप्रेम उच्चारण किया करते थे, कि जैसे कोई अलोकिक आनन्द का मेघ मधुर मधुर-शब्द करके बरसता है।

श्री अग्रदास जी रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तकाचार्य माने जाते हैं। वस्तुतः रामानन्दीय श्री सम्प्रदाय के उद्गम स्थान गालवाश्रम और रेवासा महापीठ ही हैं। रसिक भावनाओं से भावित होकर उन्होंने अपने इष्टदेव की आराधना का जो स्वरूप विस्तृत किया उसे रसिक स्वरूप कहा जाता है। रेवासा महापीठ के अनेक दिव्य-देश देश के अनेक भागों में स्थापित हैं उन्हीं की प्रेरणा, उपदेश एवं भक्ति के कारण रसिक सम्प्रदाय श्री सम्पन्न हुआ और अनेक संत-भक्तकवि विचारकों ने इसमें अपना योगदान किया। फलस्वरूप एक विशाल साहित्य का निर्माण हुआ तथा विविध सिद्धान्त-ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। इन सबका मूल उद्गम स्थान रेवासा महापीठ ही था।

महाराज अग्रदास जी स्वयं हिन्दी, बृजभाषा, संस्कृत आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे और सबल एवं प्रौढ़ कवि थे उन्होंने अपने जीवनकाल में एक विशाल साहित्य का निर्माण किया। उनकी भाषा रसपूर्ण, सरल एवं गरिमा-युक्त है। उनके शिष्य, प्रशिष्यों ने भी उन्हीं की प्रेरणा से इस सम्प्रदाय को अपनी साहित्यिक प्रतिभा से सम्पन्न किया। इन सबका शुभ फल यह हुआ कि आज रसिक सम्प्रदाय का एक विशाल साहित्य भण्डार है जिसमें भक्ति सिद्धान्त, शृंगार आदि विविध विषयों पर साहित्य के रत्न भरे पड़े हैं।

✵ सिद्ध सद्गुरु देव श्री रणछोड़दास जी महाराज स्वयं रेवासा आये थे। इस घटना का उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है। श्री नाभादास की बालक अवस्था में प्राप्ति और उसके पञ्चसंस्कार आदि का वर्णन देते हुए उन्होंने कहा है कि इस घटना के समय मैं (श्री रणछोड़दास जी महाराज) श्री पतित पावन जी भगवान पयहारी जी की सेवा में था। इस घटना के पश्चात्

पतित-पावन भगवान ने कील्हदेव जी को गलता जी की गद्दी पर बैठाया। आप अति कृपा करके मुझे आपके साथ रेवासा ले गये। रैवासा में अग्रदासजी महाराज के द्वारा गद्दी की स्थापना हुई थी और श्री पतितपावन जी भगवान 10-12 साल रेवासा में विराजे थे। श्री रणछोड़दास जी महाराज ने अन्यत्र कहा है कि मेरे बड़े गुरुभाई श्री अग्रदास जी महाराज ने अकार का भावार्थ भगवान में दृढ़ विश्वास बताया है। इन वाक्यों से प्रतीत होता है कि श्री अग्रदास जी महाराज में उनकी अत्यन्त निष्ठा थी (श्रीसद्गुरुदेव की सन्निधि में से उद्धृत)

भाटों की बहियों में प्राप्त एक उल्लेख के अनुसार सं. 1575 माघ सुदी 5 मीं शुक्रवार को अग्रदास जी ने एक छोटा जानकीनाथ जी का मन्दिर बनाया जो वर्तमान में मुख्य मन्दिर के पश्चिम भाग में अथावंधि गद्दी रूप में परिणित होकर स्थित हैं, खण्डेले के तत्कालीन शासक ने 12 गाँव ठाकुर जी की भेंट में दिये थे।

श्री अग्रदेव जी महाराज से लेकर अब तक रेवासा महापीठ की आचार्य गद्दी पर 15 आचार्य हो चुके हैं श्री शालिग्रामदास जी सोलहवें महन्त हैं। यहाँ के आचार्यों की व्यावहारिक उपाधि महन्त महाराज हैं।

उथल-पुथल के उस युग में अन्य धार्मिक सम्प्रदायों की तरह समय-समय पर अनेकों विपत्तियों से गुजरना पडा है पर भगवत्कृपा से रेवासा महापीठ अपने श्रद्दालु भक्त जनों के स्नेह और श्रद्धा के कारण अपना वर्चस्व बनाये रखने में सफल रहा है। राजाओं का कोप, इतर धर्म सम्प्रदायों की ईर्ष्या, द्वेष ने मन्दिर की किंचित हानि की, किन्तु इसका मूल स्वरूप निरन्तर निखरता रहा।

श्री अग्रदास जी महाराज के बाद होने वाले आचार्यों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:—

1. श्री विनोदी जी महाराज
2. श्री ध्यानदास जी
3. श्री चरणदास जी
4. श्री बालकिशनदास जी
5. श्री शुकरामदास जी
6. श्री रामसेवकदास जी

7. श्री केशवदास जी
8. श्री जानकीदास जी
9. श्री सहजरामदास जी
10. श्री भागीरथदास जी
11. श्री रामानुजदास जी
12. श्री चेतनदास जी ।
13. श्री जगन्नाथदास जी
14. श्री जमनादास जी
15. श्री शालिग्रामदास जी

श्री रेवासा महापीठ एक सिद्धपीठ है । अनेकों संतों की पावन तपश्चर्या से यह स्थान महिमा मण्डित है । यहां का वातावरण शान्त, सात्त्विक एवं विस्मयजनक रूप से प्रभावकारी है । पूज्य सद्गुरु देव की सन्निधि नामक ग्रन्थ में एक जगह बहन ने मन्त्रानुष्ठान के स्थल के सम्बन्ध में प्रश्न किया है, उत्तर में पूज्य गुरुदेव ने कहा कि जिस स्थान में तपःपूत महात्माओं ने अपनी तपस्या से वहां के परमाणुपुञ्जों को दिव्य कर दिया है वहां पर साधकों को शीघ्र सफलता मिलती है । रेवासा महापीठ भी महापुरुषों की तपस्थली रही है, आज भी यहां के परमाणुपुञ्ज साधकों को अलौकिक शांति दे रहे हैं ।

—राघवदास : वेदान्ताचार्य

॥ श्रीजानकी वल्लभो जयति ॥

श्रीमते रामानन्दाय नमः श्री अग्रदेवाचार्य नमः

श्री अग्रस्वामी चरित

दो०--श्रीसदगुरु पद रज कृपा, जग मंगल आधार ।
उर धर वरणों विशद यश, पावन अग्र विहार ॥१॥
श्रीशुशील पद रज कृपा, अगम सुगम होजाय ।
विमल प्रेम मति गति रसे, रसावेश तन पाय ॥२॥
श्रीशुभशोला स्वामिनो, पद पंकज सुचि धूर ।
परसत विनसत अघ अमित, उर बस युग छवि पूर ॥३॥

सो०-रूपसरस धरिदेह करुणा गुण ललि लाल को ।
भवनिधि कठिन अछेह रचो तरणि रस चन्द्रिका ॥४॥

दो-० रूपलता सीया सखी, चन्द्रअली रस खान ।
निज चेटो अस करु कृपा, उर बस जानकि जान ॥५॥

श्रीअगस्त मुनि परम विचक्षण । कह्यो ललितयश सुन्यो सुतीक्षण
रामभक्त द्वादश भट भारो । तिनयत प्रगट भये असुरारी ॥
भूतल प्रगटि भक्ति भल छाई । तदपि सार रस रूप छिपाई ॥
सुगम सेतु बांध्यो रामानन्द । गे पर धाम मोद भरि सानंद ॥

दो०- तिहिं विलोकि श्रीजनकजा मंद मंद मुसकाय ।
पिय सन बोली नेह युत, महल टहल नहिं पाय ॥६॥

सरस गिरा सुनि पिय रसलीना। महल टहल कहि तव आधीना ।।
तुम्हरी कृपा कोर बिनु सीता। कस पावै रस रहस्य पुनीता ।।
ताते बेग द्रवहु अब प्यारी। हंसि बोली तब जनक दुलारी ।।
चारु शील वर रच्यो उपाई। जाते सुगम महल सिवकाई ।।
चारु शिला कह पिय रुचि जानी। चन्द्रकला सब रस गुण खानी
प्रीति रीति रस खान स आली। परम चतुर अरु गुण गण शाली ।।
धरैं भूमि आचारज रूपा। जगत प्रचारै रहस स्वरूपा ।।

दो०- भली कही सर्वेश्वरी, हंस बोले श्रीराम ।
चन्द्रकला तुम जाय जग, प्रगटो रहस ललाम ।।७।।

चन्द्रकला आयसु शिर लीन्हा। स्वयं सन्त तन अनुपम कीना ।।
वयस किशोर गौर तन नीको। दृग भुज भाल विशाल सुटीको ।।
विप्र रूप बटु अतिहि विचित्रा। रूप शील गुण परम पवित्रा ।।
युगल चरण पंकज धर शीशा। विनय करी सुनु पिय अवधीशा ।।
जो प्रसन्न होय आयसु दीन्हा। सो सब भांति दासि शिर लीन्हा ।।
तव पद कृपा सुगम सब मोरे। तदपि नाथ कछु चाहउँ औरे ।।
कलिमल ग्रसित जीव अति पापी। अति कृतघ्न विषई मदरापी ।।
दुष्टाचार कुटिल व्यभिचारी। ते कस नाथ महल अधिकारी ।।

दो०-सजल नैन करुणा भरे, बोले युगल कुमार ।
तव पद्धति आश्रित रहै, लख न तन अपचार ।।८।।
शत्रु निकंदन जग प्रगट, पयहारी अवतार ।
तिन तै तुम सम्बन्ध लइ, देइ करहु विस्तार ।।९।।
उर धर पद शूचि नाय शिर, मुख प्रसन्न मन मोद ।
गालव मुनि आश्रम विमल, आये करत विनोद ।।१०।।

फाल्गुण शुक्ला दोज सुहाई । नभ मुनि वणिचन्द्रे सम आई ।।
श्रीगुरुपद पंकज महँ धरि शीशा । दीन होय कहे वचन ऋषीशा।।
त्राहि त्राहि आरत जन हेतू । बिन कारण दयालु भव सेतू ।।
जय निर्वेद ज्ञान गुण खानी । सीताराम रहम मति मानी ।।
दीन बन्धु प्रभु जन प्रति पालक । कलिमल कठिन दोष के घालक।।
काम क्रोध संताप नसावन । भक्ति ज्ञान वैराज्ञ बढ़ावन ।।
शरण शरण प्रभु शरण तिहारो । कृपाकंद अघ औगुण हारी ।।

दो०--दीन बचन सुनि मुदित हो, बोले दीन दयाल ।
सर मज्जन करि आवहू, पावहु भक्ति रसाल ।।११।।

करि मज्जन आये तत्काला । गहि पद उर भर आनँदमाला ।।
प्राची दिशि मुख आसन दीना । उत्तर मुख गुरु कियेउ प्रवीना ।।
त्रित जलहि मार्जन कीना । द्वादश तिलक कंठि युग दीना ।।
रामायुध भुज अंकित कियऊ । युगल मंत्र सेवा युग दियऊ।।
अग्रदास वर नाम धरेऊ । सरस भाव शुचि नात भरेऊ ।।
पुनि बोले गुरु दीन दयाला । है शरणागत षट विधि हाला ।।
प्रभु अनुकूल कर्म कहँ करई । पुनि प्रतिकूलं कर्म परि हरई ।।
सिय पिय हैं समर्थ मम रक्षक । प्रभु गुण गण मन मनन सुपक्षक
आत्मसमर्पण करं दीनता । हरि गुरु संत सें नहीं भिन्नता ।।

दो०--ले सम्बन्ध अनंद उर, करि साष्टाङ्ग प्रणाम ।
सब सन्तन शिर नाय पुनि, भे परि पूरण काम ।।१२।।

पृथ्वीराज समय तिहिं आये । समाचार सुनि अति सुख पाये ।।
आज्ञा दीनो तब सुमन्त कहँ । होय महोत्सव इहि अवसर महँ ।।

सुनि नृप आयसु मंत्री धाये । बाजा अमित निशान बजाये ।।
सिय पिय सनमुख भयो समाजा । अति आनन्द मगन मुनि राजा ।।
लिये सकल मंगल के सामा । आई दर्शन हित पुर वामा ।।
भयो कुलाहल चहुँ दिशि माहीं । पंच शब्द सुनि अति सुख पाहीं

दो०--नृप रानी बालाँ लसै, सुनि शुभ भरि आनन्द ।
मुक्ता चोक पुराइ चलि, दर्शन हित गति मन्द ।।१३।।

किये अयाची याचकन, गुरु नृप हिय हुलसाय ।
अभिलाषा पूरी सबन, दिय अशीष सुख पाप ।।१४।।

कृष्णदास उर भई अभिलाषा । लगै भोग पावैं हरिदासा ।।
कियो निमंत्रण दश दिशि माहीं । आये संत अमित तिहि ठाहीं ।।
जहं तहं सीताराम विराजैं । होय नाम धुनि मनु घन गाजैं ।।
करहिं वेद ध्वनि, पण्डित ज्ञानी । कोउ निरूपहिं तत्व बखानी ।।
कोई निजपर ज्ञान सु मण्डित । कोई मत अद्वैत विखण्डित ।।
कोउ करहिं वैराग्य निरूपण । कोउ वरणैं प्रपत्ति बिनु दूषण।।
कोई भक्ति कहै मति खानी । रस रूपा के भेद बखानी ।।
नवधा दशधा कह तहं कोई । परामध्य कोउ को मति भोई ।।
कोउ कर कथा कीरतन कोऊ । कोउ अर्चा पद वंदन सोऊ ।।
कोउ जप तप व्रत संयम नेमा । कोऊ परे मस्त होइ प्रेमा ।।
कोइ मानसरति करत इकन्ता । इहिं विधि जुरे अमित वर सन्ता

दो०--कृष्णदास युत दीनता, करि प्रणाम रस खान ।
यथा योग्य आसन दियेउ, सब कर करि सम्मान ।।१५।।
भयो परम आनन्द वर, लखि सुर मुनि सिधनाग ।
संत वेष धर सकल तहं, आये भरि अनुराग ।।१६।।

भयो अनूपम अस आनन्दा । शारद मुद भरि भइ मति मन्दा ।
मनु उमगी सत्संगति सरिता । रामभक्ति पय निर्मल भरिता ।।
तेहि सब जग कहं पावन कीन्हा । भक्त सारसन अति सुख दीन्हा
मास दिवस तहं हरिजन छाये । पुनि निजजिन आसनन सिधा
सन्तन दीन्हेउ आशीर्वादा । अग्र हृदय हो भक्कि दराजा ।।
अग्रदास वर अनुपम पायो । मन क्रम वच गुरुपदरति लायो ।।
जेष्ठ भात श्रीकील देव जू । प्रीति परस्पर शूचि अभेवजू ।।
प्रीति प्रतीति देख भाइन में । सहज प्रसन्न भये गुरु मन में ।।
हेमानन्द रहे लघु भ्राता । तिनपर प्रीति अधिक सुख दाता ।
हेमानन्द नेह मति सागर । भरत सनेह देह धरे नागर ।।
तिनको सुयश विमल अघहारी । गाय गाय तरिहैं नर नारी ।।

दो०--श्रीगुरु आयसु पाय कर, कील महंती कीन ।
अग्रदास निज अनुज सह, अमल भक्कि रस लीन ।।१७।।

श्रीरघुनन्दन लषण जिमि, एक रूप जग जान ।
अग्रहेम दोउ भ्रात तिमि, रीति रहनि रस खान ।।१८।।

अग्रदेव रसना रस नामा । ध्यान धरहि अन्तर सियरामा ।।
वन प्रमोद रस खानि भाव भर । कनक भवन सेवा सु ललित कर ।।
भाव भेद रस मधुर सु छन्दा । गुप्त केलि वर सिंधु प्रबन्धा ।।
देव गिरा अरु भाषा माहीं । रचे अनेकन ग्रन्थ सुठाहीं ।।
ध्यान गंजरी अरु पद सागर । परम प्रसिद्ध ग्रन्थ भाषाकर ।।
पुनिखल जीव अमित जग तारन । कियो विचार यात्रा चारन ।।
कुटिल कुचालि अमित अघराशी । अस जीवन हू भक्कि प्रकाशी ।।

वणिक एक मग सेवा कीना । तासु सुवन अहि डस दुखदीना ।।
चरणामृत श्रीसन्तन केरो । दे जिवाय हरि भक्तिहि प्रेरो ।।
करुहु सन्त सेवा मन लाई । यहि सम अपर धर्म नहिं भाई ।।

दो०--मगग्रावत नाभा मिले, लोचन दियेउ प्रवीन ।
निज आश्रम ला मन्त्रदे, कियेउ भक्ति रसपीन ।।१९।।

भक्तमाल अदभुत रची, अति विचित्र रस रूप ।
तासु तनक अनुमोद ते, मिलैं श्रीरघुकुल भूप ।।२०।।

अकथन अनुपम नेह निधि, अमितअखंड प्रचण्ड ।
विधि हरिहर सकुचत कहत, तासु प्रभाव उदंड ।।२१।।

रसिक भक्त सिय पिय मन भाये । सो स्वरूप नामा दरसाये ।।
अग्रदास यश विशद विशाला । पावन करन हरन कलि काला ।।
ज्ञान विराग भक्ति निस्तारक । पढत सुनत समुझत निस्तारक।।
करत संत सेवा रस दाई । अमित सन्त नित रह सुखपाई ।।
जिहि विधि सन्त परम सुख माने । सोइ प्रकार सेवा विधि ठाने ।।
परिचर्या निज कर प्रभु करई । गत अभिमान रुचो अनुसाई ।।
अर्चा अरु मानस वसु काला । करहिं लडावहिं श्रीलालि लाला ।।
निज कर बाग अनूप लगायो । सिय मन रंजन नाम धरायो ।।
तासु बाग मधि विटप रसाला । ता तरु तर मानसि सब काला ।।
मान नृपति दर्शन हित आये । बाग द्वार चर चारु बिठाये ।।
तिहि क्षण निजकर बागहि झारा । पत्र बटोर दूर जा डारा ।।
देखी द्वार भरि नृप जन की । बैठ विटप तर मानसि मन की ।।
बैठ नृपति जोहत प्रभु वाटा । लगे वहां कछु औरहि ठाटा ।।
भयो विलम्ब स्वामि नहिं आये । श्रीनाभा देखन हित धाये ।।

प्रभु लखि पर महिदंड समाना । सुमर सुगुणगण द्रगभरिआना ।।
पुलकित तन मन भरे अनन्दा । जय जय श्रीगुरु करुणा कन्दा ।।
नृपति विचार क्रीन मन माही । का अभाग्य दर्शन भये नाहीं ।।
बाहिर आ लखि अद्भुतरचना । महि परिकहिमृदुदीनसुवचना ।।
हे करुणा निधि परम उदारा । मम हित राम कृपा तन धारा ।।
तव पद पंकज निरख कृपाला । मोह मान मद गे तत्काला ।।

दो०--करि विनती सानन्द नृप, पाय भक्ति वरदान ।
श्रीस्वामी सिय पिय चरण करत निरन्तर ध्यान ।।२२।।

एक दिवस सत्संगति माहीं । कली अग्र हेमानन्द पाही ।।
जेते अनुज श्रीस्वामी केरे । अपर सन्त तहं जुरे घनेरे ।।
तज्ञ विज्ञ योगी वैरागी । आये विमल राम अनुरागी ।।
तत्व निरूपैं ते तत्व वेत्ता । माया जीव ब्रह्म है नेता ।।
पांच स्वरूप जीव निरधारा । पांच उपाय अरु पांच विकारा ।।
पांच सहायक ब्रह्म विचारा । श्रुति सिद्धान्त अगम निखारा ।।
बोले कली मृदुल भर प्रेमा । करैं भजन निज बल दृढ़ नेमा ।।
बोले वचन अग्र रसदाई । हरि बल सकल कर्म बनि आई ।।

दो०--भये तत्व सिद्धान्त में, भेद अष्टदस भिन्न ।
रूप राशि श्रीजनक जा, प्रगटी ताही छिन्न ।।२३।।

कली अग्रपद गहि स्तुतिकीन्ही । कृपा दृष्टि किय सिय रसभीन्नो ।।
मृदु वच अग्रहि आयसु दीना । रैवासे रच्यो कुंज नवीना ।।
अन्तर्धान भई तब सीता । रैवासे गे धर नव रीता ।।
हेमानन्द शिष्यन युत जाई । जानकी वल्लभ रीति चलाई ।।
लली लाल सेवा परधरा । अष्टकाल पद्धति सिखराई ।।
राग भोग सेवा विधि नाना । रसिकन सदाचार परमाना ।।

श्रीविनोद शुचि शिष्य प्रवीना। थल एकान्त भजन चित दीना॥
ताहि समय दिल्लीपति आयो। सुन प्रभाव दर्शन हित धायो॥
दंतुवन करत रसिक वर रूपा। पूछत भयेउ यवन वर भूपा॥
सुने यहां भै सिद्ध फकीरा। देहु बताय अहो मति धीरा॥
कहा काम तुमरो उन पाहीं। बैठो मिलैं यहीं शुचि ठाहीं॥
दो०--पूगी फल तें दाबि पट कूप अछादित कीन।
तापर चढ़ नृप मोद भरि, तहं निवाज पढ़ि लीन॥२४॥
कही अग्र वर सुनहु नृपति वर। रह्यो अधार नहीं अद्भुत तर॥
निराधार बैठे श्रीस्वामी। देख प्रभाव भयो अनुगामी॥
शीश नाय तब बिनती कीनो। कछु सेवा लहिहों मति भीनी॥
है अनन्द रघुवर की दाया। नहिं कुछ चाहिये यह जग माया॥
धेनु चरन हित पट्टो दीनो। सो अहीर पशुपालन लीनो॥
भजन सिद्ध कर आय बिनोदी। गहे चरण स्वामी अति मोदी॥
हरि हरिजन सेवा विधि सारी। सो श्रीनाभा कियउ सम्हारी॥
श्रीविनोदि कहं गादी दीनो। आप भजन एकान्त प्रवीना॥
दो०--निज मन्दिर सेवा करि, भे प्रभु अन्तर्धान।
मर्म न कोऊ जान यह, नाभा मन अनुमान॥२५॥
अग्रदास शुचि चरित यह, प्रभू प्रेरित कियो गान।
रूपकला मतिमन्द लखि, क्षमिये कृपा निधान॥२६॥
बार बार याचत यही, रूपकला अति दीन।
काम क्रोध सत्मर रहित, रह मति पदरति लीन॥२७॥
नहिं विद्या नहिं चातुरी, सब विधि परम गंवार।
श्रीसुशील श्रीअग्रप्रभू, लीजे मोहि उबार॥२८॥
काम क्रोध रति कुटिल लखि, अब न बिसारो नाथ।
शरण सखद ब्रत निरखी प्रभू, गहि राखो मम हाथ॥२९॥

———

❋ श्रीजानकी मधुर षोडशी ❋

शारदोवाच

चिकुराः कुटिलाः सघना मधुराः श्रवणे मधुरे मणिपुष्पयुते।
अलिकं मधुरं शशिविन्दुयुतं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥१॥
भृकुटी मधुरे स्मरचापनिभे पृथुनेत्रयुगं सदयं मधुरम्।
सुनसं शुकतुण्डपरं मधुरं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥२॥
विमलं मृदुलं वसनं मधुरं, मधुरं मधुरं सकलाभरणम्।
कमनं शिशु-संहननं मधुरं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥७॥
मधुरं मधुरं गमनं मधुरं मधुर मधुरम् स्खलनं मधुरम्।
मधुरम् भ्रमणं कलनं मधुरं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥८॥
अयनं मधुरं चयनं मधुरं शयनं मधुरं श्रयणं मधुरम्।
अशनं मधुरं हसनं मधुरं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥९॥
स्वनितं मधुरं श्वसितं मधुरं विहितं मधुरं निहितं मधुरम्।
प्रथितं मधुरं क्वणितं मधुरं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥१०॥
मृगितं मधुरम् विदितं मधुरम् गनितं मधुरम् गलितं मधुरं
श्रुतिगं मधुरम् मुखगं मधुरं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥११॥
मधुरं मधुरम् चरितं मधुरम् मधुरम् मधुरम् भणितं मधुरम्।
मधुरं मधुरं मिलनं मधुरं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरं ॥१२॥
श्रवणं मधुरं स्मरणं मधुरं कथनं मधुरं मननं मधुरम्।
वरणं मधुरं भरणं मधुरं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥१३॥
प्रणता मधुराः प्रणतिर्मधुरा प्रणयो मधुरः करुणा मधुरा।
सरणिर्मधुरा ग्रहणं मधुरं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥१४॥
निगमो मधुरः प्रकृतिर्मधुरा जयनं मधुरं रटनं मधुरम्।
महितं मधुरं रसितं मधुरम् मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥१५॥
जनकः मधुरो जननी जधुरा मधुरा अनुजा अनुगा मधराः।
सुकुलं मधुरं नगरं मधुरं मिथिलेशसुता-सकलं मधुरम् ॥१६॥

———

जगद्गुरुश्रीमदग्रदेवाचार्याष्टकम् ।

रामानन्दकृतानन्दभाष्याम्भोजप्रभाकरम् ।
वन्देऽहमग्रदेवार्यं द्वाराचाय जगद्गुरुम् ॥1॥
साध्यसाधनभक्त्योश्च शिक्षकं सिद्धपूजितम् ।
वन्देऽहमग्रदेवार्यं द्वाराचार्यं जगद्गुरुम् ॥2॥
ज्ञापकं जीवमायेशतत्वानां सात्विक मुनिम् ।
वन्देऽहमग्रदेवार्यं द्वाराचार्यं जगद्गुरुम् ॥3॥
अष्टयामविधानज्ञं रामकीर्त्तनतत्परम् ।
वन्देऽहमग्रदेवार्यं द्वाराचार्यं जगद्गुरुम् ॥4॥
धर्मरक्षापरं सीतारामभक्तिरसाम्बुदम् ।
वन्देऽहमग्रदेवार्यं द्वाराचार्यं जगद्गुरुम् ॥5॥
वादे वादिविजेतारं भक्तिदानेन मुक्तिदम् ।
वन्देऽहमग्रदेवार्यं द्वाराचार्यं जगद्गुरुम् ॥6॥
रहस्यानां त्रयाणां च व्याख्यातारं तपोनिधिम् ।
वन्देऽहमग्रदेवार्यं द्वाराचार्यं जगद्गुरुम ॥7॥
शिष्याणां पञ्चसंस्कारैवैष्णवत्वविधायकम् ।
वन्देऽहमग्रदेवार्यं द्वाराचार्यं जगद्गुरुम् ॥8॥
वष्णव भाष्यकार श्री वैष्णवाचार्य निमितम् ।
अष्टकं भवतादेवत्, सर्व कल्याणकारकम् ॥9॥

श्री अग्रदेवाचार्यजी के उपदेश

आगि लगन्ते झौंपड़ा जो निकसै सो लाभ ॥
जो निकसै सो लाभ न करु मानुस तन चोरी ।
जे लेखे की श्वास गई आवत न बहोरी ।।
ज्यौं कर अञ्जलि माहिं घटत जल थिर न रहाई ।
कर आरत हरि भजन साखि काया वध गाई ॥
अगरु कहां लगि थेगरी दीजै फाटे आभ ।
आगि लगन्ते झोंपड़ा जो निकसै सो लाभ ॥

नदी किनारे रूखड़ा जब तब होय विनास ॥
जब तब होय विनाश देह कागर की छागर ।
आयु घटत दिनरात सदा आगे को आगर ॥
जरा जोर वर श्वास प्रान को काल सिकारी ।
मूसक कहा निशङ्क मृत्यु तकि रही मँजारी ॥
अगर भजन आतुर करौ जौ लौं या घट स्वास ।
नदी किनारे रूखड़ा जब तब होय विनास ॥

श्री जानकीजी की स्तुति

ठुमुक ठुमुक चलत चाल जनक नन्दिनी ।
अति मधुर वचन तोतरे त्रय ताप मोचिनी ॥
शोभित नव नील वसन मन्द हास रुचिर दसन,
झलकत उरमाल सकल देव वन्दिनी ।
नूपुर पग बजत मनो सामवेद करत गान,
छुद्र घण्टि रुचिर नाद उर अनन्दिनी ॥
जगत मात सखिन सग विहरत बहु करत रंग,
अग्रदास निरखत छवि भव निकन्दिनी ॥

चौबीस अवतार

जय जय मीन बराह कमठ नर हरि बलि बामन
परशुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जग पावन ॥
बुद्ध कल्कि अरु व्यास पृथू हरि हंस मन्वन्तर ।
यज्ञ ऋषभ हय ग्रीव ध्रुव वरदैन धन्वन्तर ॥
बद्रीपति दत्त कपिलदेव सनकादिक करुना करौ ।
चौबीस रूप लीला रुचिर श्री अग्रदास उर पद धरौ ॥

कविजन करत विचार बड़ों को ताहि भनिज्जै ।
कोउ कह अवनी बड़ो जगत आधार फनिज्जै ॥

सो धारी शिर शेष शेष भूषण कीनो।
शिव आसन कैलास भुजा भरि रावन लीनो॥
रावन जीत्यो बालि बालि राघव इक सायक दँडे।
अगर कहैं त्रयलोक में हरि उर धरे तेई बड़े॥

हरि सुजस प्रीति हरिदास के त्यौं भावै हरिदास जस।
नेह परस्पर अघट निबहि चारौं जुग आयौ।
अनुचर को उतकर्ष श्याम अपने मुख गायौ॥
ओत प्रोत अनुराग प्रीति सबही जग जानै।
पुर प्रवेश रघुवीर भृत्य कीरति जु बखानै।
अगर अनुग गुन बरनते सीता पति नित होयँ वस।
हरि सुजस प्रीति हरिदास के त्यौं भावै हरिदास॥

निवहो नेह जानकी वर से।
जाँचो नाहि और काहू से, नेह लगै दशरथ के कुँवर से।
अष्ट सिद्धि नवनिद्धि महाफल, नहीं काम ये चारों वर से॥
'अग्रदास' को याही वानी राम नाम नहिं छूटे यहि घट से।

सदा न फूले तोरई, सदा न सावन होय।
सदा न सावन होय, सन्त जन सदा न आवैं।
सदा न रहे सुबुद्धि, सदा गोविन्द गुण गावैं।
सदा न पक्षी केलि करै, इह तरुवर ऊपर।
सदा न स्याही रहे, सफेदी आवे भू-पर॥
'अग्र' कहे हरि मिलन को, तन-मन डोरा खोय।
सदा न फूले तोरई, सदा न साबन होय।

—अग्र स्वामी

महर्षि वाल्मीकि संस्कृत विश्वविद्यालय
12417
अयोध्या
श्री रामानन्द दास ज्ञानी सेवा ट्रस्ट

प्राप्ति स्थल :

गोपाल सागर आश्रम

ग्राम-विधानी तह. सांगानेर जयपुर (राजस्थान)

श्री अग्रदेवाचार्य पीठ

रेवासा-सीकर (राजस्थान)

प्रथम आवृति-३०००

मुद्रक-गजेन्द्र प्रिन्टर्स, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर।